निर्वचन -

निर्वचन का सीधा सादा अर्थ है - "अर्थ निर्धारण"। दूसरे शब्दों में विधियों को अर्थ प्रदान करने को ही निर्वचन कहा जाता है। प्रचलित भाषा में इसे व्याख्या अथवा अर्थान्वयन भी कहा जाता है।

सामण्ड के अनुसार - "निर्वचन अथवा (अर्थान्वयन) वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा न्यायालय विधानमण्डल का अर्थ उस माध्यम द्वारा मालुम करते हैं जिसे प्राधिकृत प्रकारों में वह अभिव्यक्ति किया गया है।"

ग्रे के अनुसार - "निर्वचन एक विज्ञान है जिसके द्वारा अधिनियम में प्रयोग किये शब्दों का वही अर्थ लगाया जाता है, जो विधायिका का आशय रहा हो या अनुमानतः आशय हो।"

मैक्सवेल के अनुसार - "निर्वचन वह पद्धति है जिसके द्वारा न्यायपालिका अधिनियम में प्रयोग किये गये शब्दों का अर्थ निर्धारित करती है।"

Jack v Thakur Ganga Singh AIR 1960 S.C के वाद में निर्वचन के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है - "निर्वचन एक ऐसा ढंग है जिसके द्वारा किसी शब्द या उपबन्ध के सही भाव या अर्थ को समझा जाता है।"

निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि - न्यायालयों द्वारा संविधियों की भाषा, शब्दों एवं अभिव्यक्तियों के अर्थ निर्धारण की प्रक्रिया ही संविधियों का निर्वचन है। इसे न्यायालय का एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है।

निर्वचन और अर्थान्वयन -

निर्वचन, व्याख्या एवं अर्थान्वयन यद्यपि एक ही भाव के द्योतक हैं किन्तु इसके बावजूद भी निर्वचन और अर्थान्वयन को एक ही भाव में प्रयुक्त करने में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है।

निर्वचन से अभिप्राय संविधियों की भाषा के अधीन प्रयुक्त शब्दों के प्राकृतिक अर्थों से ही उसके सत्य स्वरूप के निर्धारण से

लिया जाता है।

जबकि अर्थान्वयन का अर्थ संविधियों में प्रयुक्त शब्दों से परे हटकर उसकी आत्मा के आधार पर उसके सही स्वरूप को जानने की प्रक्रिया से लिया जाता है।

क्रॉफोर्ड, सदरलैण्ड और न्यायाधीश जी० पी० सिंह ने निर्वचन एवं अर्थान्वयन को एक दूसरे का समानार्थी एवं पर्यायवाची के रूप में ग्रहण किया है।

निर्वचन के प्रकार—

संविधियों का निर्वचन दो प्रकार से होता है—

1. वैधानिक 2. सैद्धान्तिक

वैधानिक निर्वचन के भी दो भाग हैं—

(i) प्रमाणिक (ii) स्वभाविक (Usual)

तात्विक रूप से व्याख्या अर्थात निर्वचन को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—

1. शाब्दिक अथवा व्याकरण मूलक व्याख्या (Literal or Grammatical Interpretation) तथा
2. तार्किक व्याख्या (Logical Interpretation)

व्याकरण मूलक व्याख्या को निम्नांकित शब्दों में भी अभिव्यक्त किया जाता है—

(1) Litera Scripta or

(2) Litera legis. तार्किक व्याख्या की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब शाब्दिक व्याख्या अवांछित एवं असंगत परिणाम उत्पन्न करने लगती है। तब विधायिका के आशय का पता लगाने के लिए तार्किक (Logical) व्याख्या का सहारा लिया जाता है।

निर्वचन की विषयवस्तु—निर्वचन की विषय वस्तु सदैव कोई अधिनियम या परिनियम होता है।

निर्वचन का उद्देश्य

सांविधिक निर्वचन की समस्या तब उत्पन्न होती है जब लोग सरकारी अभिकरणों द्वारा अपने प्रति किये गये व्यवहार से अप्रसन्न हो कर न्यायालय में वाद प्रस्तुत करते हैं। न्याय का उद्देश्य सांविधिक निर्वचन के माध्यम से न्याय प्रदान करना है।

निर्वचन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए मैक्सवेल महोदय ने अपनी पुस्तक 'Interpretation of Statute' में यह स्पष्ट किया है कि संविधियों के निर्वचन का मुख्य उद्देश्य अथवा आशय यह निर्धारित करना है कि संविधि में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उसका अभिव्यक्त या निर्धारित रूप से आशय क्या है। इसमें यह भी देखा जाता है कि किसी वाद विशेष में व्याख्याकार द्वारा दी गयी व्याख्या प्रयोज्य होती है या नहीं।

इस प्रकार निर्वचन का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि-

(i) संविधि में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से आशय क्या है। तथा

(ii) किसी प्रकरण विशेष में व्याख्याकार की व्याख्या प्रयोज्य होती है या नहीं।

संविधियों के निर्वचन के कार्य प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। अतीत काल में निर्वचन का उतना ही महत्व था जितना आज है। रोमन विधिशास्त्रियों द्वारा निर्वचन के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। भारत में भी प्राचीन काल की मीमांशाओं में निर्वचन के नियमों का उल्लेख मिलता है।

विधायन की भावना और प्रारूपक की भाषा में सामञ्जस्य एवं सम्यता में अभाव होने पर न्यायाधीश उसे निर्वचन की कला की कड़ी से जोड़ता है जिस प्रकार स्वर्णकार किसी टूटे हुए आभूषण की मरम्मत करके तथा मोतियों की माला को एक सूत्र में गुथकर उपयोगी बनाता है ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण संविधि के प्रावधानों को न्यायाधीश निरूपित करता है।

Taj Mahal Hotel Vs Commissioner Incometax A.I.R 1969 A.P
इस वाद में निर्वचन का मुख्य उद्देश्य विधि निर्माताओं का आशय ढूंढा माना गया।
संविधि का निर्वचन निर्माताओं के आशय के अनुरूप होना चाहिए।

सांविधिक निर्वचन का उद्देश्य संविधि में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ तथा उद्देश्य एवं तर्काधार दोनों की खोज करना है। संविधि के निर्माण के पश्चात के परिवर्तित सामाजिक परिवेश में निर्वचन की सकारात्मक भूमिका हो सकती है। यह माना जायेगा कि विधायिका ने विवक्षित रूप से संविधि की शाब्दिक भाषा में कतिपय सुधार की शक्ति न्यायालय को प्रत्यायोजित किया है। बशर्ते कि ऐसा सुधार निष्पक्षता और न्याय (fairness and justice) सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक हो।

Nature of Statutes and their Parts

संविधि की प्रकृति एवं संविधियों का वर्गीकरण

जब हम संविधि के अर्थान्वयन सम्बन्धी विधि का अध्ययन करतेहैं तो सर्वप्रथम यह जानना होता है कि, संविधि या 'Statute' शब्द की क्या व्याख्या है? संविधि या कानून जैसा कि सामान्य रूप से अभिव्यक्त किया जाता है, यह विधायिका की इच्छा है। A Statute, or Act of Parliament, is the will of legislature

भारतीय संविधि या तो केन्द्रीय या प्रान्तीय विधायन द्वारा बनायी जाती है। स्वतन्त्रता पूर्व जो ब्रिटिश सत्ता द्वारा निर्मित कानून थे, या रेगुलेशन निर्गत किये जाते थे वे भी इसी में सम्मिलित हैं। रेगुलेशन का अर्थ है वे नियमावलियाँ जो राष्ट्रपति द्वारा भारतीय संविधान के अनु० २५० में बनाये जाते हैं।

विधायिका राष्ट्र की प्रतिनिधि होती है। राष्ट्र व राज्य की सम्प्रभुता के प्रतिनिधित्व के लिए जनाकाँक्षा को अभिव्यक्त करने का कर्तव्य विधायिका में सन्निहित है। विधायिका अपनी इच्छा को संविधि द्वारा क्रियान्वित करती है। जब संविधि का निरूपण न्यायालयों द्वारा किया जाता है तो निर्वचन के नियमानुसार न्यायालय जो सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं, वे संविधि की व्याख्यायें भी संविधि का अंग बन जाती है।

डायस एण्ड ह्यूज ने अपने ज्यूरिसप्रूडेन्स नामक ग्रन्थ में 'विधान' legislation शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि- "किसी प्राधिकारिक शक्ति द्वारा विधि को जानबूझकर एक निर्धारित ढाँचे में ढालने की प्रक्रिया को विधान कहते हैं। बशर्ते कि प्राधिकारिक शक्ति को न्यायालय ने विधि निर्माण के लिए सक्षम शक्ति के रूप में मान्य किया हो।"

इसी प्रकार ग्रे महोदय ने भी कहा है कि—

"Legislation is formal expression of the legislative organ of the society."

अर्थात राज्य की व्यवस्थापिकीय अंग की औपचारिक घोषणाओं को विधान कहते हैं।

इसके दो रूप हो सकते हैं —

(A) अधिनियमित विधि (Enacted law)

(B) अनाधिनियमित विधि (Unenacted law)

इंगलैण्ड में इसे क्रमशः Statute law व Comman Law कहते हैं।

भारतीय संविधान के अनु० 13 व 245 में संविधि (Statute) के स्थान पर विधि (Law) का प्रयोग किया गया है। सामान्य समझ में सभी विधि को संविधि के नाम से पढ़ा जाता है। वर्तमान विधि के अन्तर्गत आदेश, अध्यादेश, नियम और परिनियम भी सम्मिलित हैं। कभी कभी विश्वविद्यालय द्वारा अपनाया गया कानून भी संविधि के नाम से जाना जाता है।

सामण्ड के विचार से विधान दो प्रकार के होते हैं —

1. सर्वोच्च विधान Supreme Legislation
2. अधीनस्थ विधान Sub-ordinate Legislation

सर्वोच्च विधायन का उद्भव राज्य की सम्प्रभु शक्ति से होता है। अधीनस्थ विधायन अतिरिक्त किसी प्राधिकारी द्वारा निर्मित होते हैं। प्रत्यायोजित विधायन भी इसी के अन्तर्गत आता है। अधीनस्थ विधान के अग्रलिखित रूप हो सकते हैं —

Colonial Legislation
Excutive legislation
Judicial legislation
Municipal legislation
Legislation by Autonomus Bodies

विधान द्वारा निर्मित विधि और न्यायिक पूर्व निर्णयों से उत्पन्न विधि के अन्तर को स्पष्ट करते हुए आस्टिन ने कहा है कि, विधान निर्मित विधि राज्य की सम्प्रभुता शक्ति का प्रतीक होती है तथा वह प्रत्यक्ष

रूप से निर्मित होती है। जबकि न्यायिक पूर्व निर्णय से उत्पन्न विधि न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के निर्णयाधार तथा इतिरोक्ति का परिणाम होती है। अतः निर्णायक विधि अप्रत्यक्ष रूप से निर्मित होती है। इसकी उत्पत्ति विवादों के विनिश्चय प्रक्रिया द्वारा होती है। किन्तु आजकल इसी विधि की भूमिका महत्वपूर्ण चर्चा का विषय बन गयी है।

संविधि का स्वरूप यदि निर्जीव और परिकल्पित सिद्धान्त निर्धारित करता है तो निर्वचन उसे जीवन्त, उपयोगी तथा सशक्त बनाता है संविधि और निर्वचन के सहसम्बन्ध को बड़े ही सटीक आहरण के साथ एक अमेरिकन न्यायाधीश ने इंगित किया है कि, दोनों की भूमिका उस आर्केस्टा (संगीत पार्टी) के आयोजन के समान है, जो श्रोताओं या उपभोक्ताओं को उचित साहचर्य से सन्तुष्टि और असन्तुलित सम्बन्ध से असन्तोष उत्पन्न करता है।
(Courts in trial · P. 207, 208 - W.F. Murphy)

संविधियों का वर्गीकरण Classification of Statute

व्यापक रूप से सामाजिक व्यवहारों को संचालित करने के लिए विधि का उद्भव विभिन्न स्रोतो से होता है। ब्लैक स्टोन और हालैण्ड आदि विद्वानों ने उन विधियों को लिखित या अलिखित विधि की संज्ञा दी है सम्प्रभु द्वारा भी प्रचलित विधियों को वैधता प्रदान कर दी जाती है, भले ही ये व्यापारिक विचार विनिमय से निकले हों या न्यायिक पटुता से पैदा किये गये हैं या व्यवसायिक अनुभव या अनुसरण द्वारा अपनाये गये हैं। सभी विधियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपयोग मानवीय व्यवहारों में समीचीन होता है। इस प्रवृत्ति के विकास का कारण चाहे हेनरी मेन का गतिशीलता का सिद्धान्त हो, चाहे जीन रस्को पाउण्ड की सामाजिक अभियांत्रिक विचारधारा हो। संविधियों की व्यापकता में किसी भी समाज में, राष्ट्र में अब तनिक भी सन्देह नहीं है कि सम्प्रभु विधि की मान्यता और सृजन की प्रणाली में उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है।

निर्वचन के निमित्त संविधियों का वर्गीकरण –

आज के युग में विधायन के द्वारा जितने भी प्रकार के कानून समाज में विद्यमान है, उनका वर्गीकरण मुख्य रूप से चार आधारों पर किया जा सकता है –

(a) अवधि के सन्दर्भ में वर्गीकरण
(b) कार्यप्रणाली के सन्दर्भ में वर्गीकरण
(c) उद्देश्य के सन्दर्भ में वर्गीकरण
(d) प्रवर्तन के सन्दर्भ में वर्गीकरण

(a) अवधि के सन्दर्भ में –

अवधि के आधार पर संविधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1. स्थायी विधि 2. अस्थाई विधि

स्थाई विधि उसे कहते हैं जिसके लिए समय विनिर्दिष्ट नहीं होता है। जबतक कि किसी दूसरे अधिनियम के द्वारा संशोधित या परिवर्तित न किया जाय जब तक कि इनके निस्तार की अवधि विद्यमान रहती है। जैसे - भारतीय संविदा विधि, साक्ष्य विधि, दण्ड संहिता इत्यादि

अस्थाई विधि उस विधि को कहते हैं, जिसकी वैधता का काल कानून द्वारा स्वयं ही सुनिश्चित कर दिया जाता है। यदि निर्धारित अवधि के भीतर निरसित नहीं किया गया तो विधि अपने निर्धारित अवधि तक बनी रहती है और यदि अवधि बीतने पर उसकी आवश्यकता बनी रहे तो विधायिका उसका नवीनीकरण करती रहती है।

जैसे भारतीय संविधान का अनु० 349, 370, 250, 352, etc.

कार्य प्रणाली के सन्दर्भ में वर्गीकरण -

1. आज्ञापक, आदेशात्मक या बाध्यकर विधि
2. निदेशात्मक या अनुमति बोधक विधि

आज्ञापक विधि वह विधि होती है, जिसमें निश्चित कार्यों को निश्चित तरीके से करने की बाध्यता होती है (जैसे C.P.C धारा 26 आदेश-1)

निर्देशात्मक विधि मात्र यह निर्देश देता है कि किसी कार्य को किया जाय यदि उस कार्य या उसके प्रस्तावित ढंग का पालन न किया जाय तो ऐसा करना उसकी वैधता के लिए सदैव घातक नहीं होगा। for Example - T.P.A. 1882 Sec 26 में पूर्ववर्ती शर्त के अनुपालन के लिए निदेशात्मक प्रभाव इंगित किया गया है।

उद्देश्य के सन्दर्भ में वर्गीकरण -

इस श्रेणी में निम्नलिखित संविधियों को समाविष्ट किया जा सकता है :—

1. संहिता कारी संविधि (Codifying Statute)
2. समेकन कारी संविधि (Consolidating Statute)

3. घोषणात्मक संविधि (Declaratory Statute)
4. उपचारी संविधि (Remedial Statute)
5. समर्थकारी संविधि (Enabling Statute)
6. दण्ड संविधि (Penal Statute)
7. कर संविधि (Taxing Statute)
8. व्याख्यापक संविधि (Explanatory)
9. संशोधन कारी संविधि (Amending Statute)
10. निरसनकारी संविधि (Repealing Statute)
11. आरोग्यकारी या विधिमान्यकारी संविधि (Curative Statute)

1. संहिता कारी संविधि से अभिप्राय उस संविधि से है, जो विद्यमान विधि को एक संहिता या सूत्र में समाविष्ट करती है। विधान और संहिता में मुख्य भेद यह है कि विधि नवीन नियमों के प्रारम्भ का द्योतक है, जबकि संहिता भूत तथा वर्तमान को जोड़ता है।

अतः स्पष्ट है कि संहिता कारी संविधियाँ विधियों को संहिताबद्ध करती है अथवा विषय विशेष पर विधियों को स्पष्ट करती हैं।

2. जब संहिता के माध्यम से पूर्वप्रचलित नियमों और सिद्धान्तों को क्रमबद्ध रूप देकर एक सूत्र में बद्ध कर दिया जाता है तब वह समेकन कारी कहलाता है। अर्थात समेकनकारी संविधियों से आशय ऐसी संविधियों से है जो किसी विषय-विशेष पर विधियों को एक स्थान पर समेकित करती हैं, या संग्रहीत करती है। उदाहरण के लिए व्यवहारिकता में व्याप्त संविदा सम्बन्धी प्रसंगों को संविदा Act 1872 के अन्तर्गत या सम्पत्तिक मामलों को व्यवहारिकता के आधार पर T.P.A. 1882 के रूप में समेकित किया गया है।

3. जो संविधियाँ सामान्य विधि और सांविधिक विधि के द्वारा मान्य अधिकारों में भ्रम निवारण हेतु प्रावधापन का

अधिकार देती हैं, उन्हें घोषणात्मक संविधि कहते हैं इस प्रकार की संविधियाँ किसी नये अधिकार का सृजन नहीं करती है बल्कि केवल विद्यमान विधि को ही घोषित करती हैं।

4. उपचारी संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जो उपचार प्रदान करती हैं। ऐसी संविधियाँ सामाजिक न्याय का द्योतक होती हैं। इससे जनहित का सृजन तथा विस्तार होता है उदाहरण के लिए मातृत्व प्रसुविधा अधिनियम 1961, तथा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम 1923 क्रमशः मातृत्व सम्बन्धी उपचार तथा कर्मकारों की समस्यायों का समाधान करती है।

5. समर्थकारी संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जिनके माध्यम से विधायिका किसी कार्य के किये जाने को समर्थ बनाती है। इसका मुख्य लक्ष्य विधायिका के उद्देश्य को मूर्तरूप देने के लिए आवश्यक कार्य किये जाने की सामर्थ्य प्रदान करना है सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार की संविधियों का अन्वेषण एक विश्लेषण बीड़ी पत्ती, बीड़ी लीव्ज एण्ड टोबैको मरचेण्ट्स एशोसिएशन बनाम बम्बई राज्य (AIR 1962 S.C) के मामले में किया।

असमर्थ कारी संविधियों से आशय ऐसी संविधियों से है जो सामान्य विधियों के अन्तर्गत उपलब्ध अधिकारों को प्रतिबन्धित अथवा समाप्त करती है।

6. दण्ड संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जो किन्ही कार्यों अथवा कृत्यों को अपराध घोषित करते हुए दण्डनीय बनाती हैं। भारतीय दण्ड संहिता 1860, खाद्य अपमिश्रण अधिनियम 1954 आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 इसके उदाहरण हैं।

7. करारोपण संविधियों से आशय ऐसी संविधियों से है जो आय अथवा निर्निष्ट संव्यहारों पर करारोपण करती हैं। ऐसी संविधियों का मुख्य उद्देश्य सरकार के लिए राजस्व एकत्रित करना है। Income tax Act, Gift Tax Act, Property tax & sell tax Act etc. are examples of Taxing Statutes

8. व्याख्यापक संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जो विधियों की व्याख्या करती है पूर्व विधियों की कमियों को दूर करती हैं। अथवा सन्देहों का निवारण करती हैं।

9. संशोधकारी संविधियों से तात्पर्य ऐसी संविधियों से है जो मूल अधिनियमों में कतिपय परिवर्तन, परिवर्द्धन अथवा संशोधन करती है। इसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान विधियों को अधिक प्रभावी बनाना है

10. निरसनकारी संविधियों से तात्पर्य ऐसी संविधियों से है जो विद्यमान विधियों को निरसित घोषित करती हैं।

11. आरोग्यकारी या विधिमान्यकरण संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जिनके द्वारा पूर्व विधियों के दोषों को दूर कर उन्हें विधि मान्य घोषित किया जाता है। अथवा ऐसे कार्यों को विधिमान्यता प्रदान की जाती है जो अन्यथा अविधिमान्य अथवा शून्य होते हैं।

सार्वजनिक संविधियों से आशय ऐसी संविधियों से है जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक नीति से जुड़े मामलों से होता है ऐसी संविधियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है।

प्राइवेट संविधियों से अभिप्राय ऐसी संविधियों से है जिनका सम्बन्ध वैयक्तिक मामलों से होता है इसमें वे सारे मामले आते हैं जिनका सार्वजनिक मामलों से अथवा जनसाधारण से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यही कुछ ऐसी संविधियाँ हैं जिनका न्यायालयों द्वारा निर्वचन किया जाता है। इन संविधियों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की विधियाँ आती हैं। निर्वचन की दृष्टि से यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ दो समान विधियों में विरोधाभास हो वहाँ पश्चातवर्ती संविधि को प्रधानता दी जानी चाहिए।

संविधियों का भूतलक्षी एवं भविष्यलक्षी प्रभाव
Retrospective And Prospective effect of Statutes

भूतलक्षी विधि से अभिप्राय ऐसी विधि से है, जो-

(i) विद्यमान विधि के अन्तर्गत उपलब्ध अधिकारों को छीन लेती है या समाप्त कर देती है, अथवा—

(ii) उन्हें हानि पहुँचाती है; अथवा

(iii) किसी नये दायित्व का सृजन करती है; अथवा

(iv) नये कर्तव्य अधिरोपित करती है; अथवा

(v) पूर्व संव्यवहारों या प्रतिफलों के सन्दर्भ में कोई नई नियोग्यता जोड़ देती है। (क्रेज के अनुसार)

सामान्यतः ऐसी विधियों को भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित नहीं किया जाता है।

किसी संविधि को भूतलक्षी प्रभाव दिये जाने के सम्बन्ध में आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा जी. रेड्डी बनाम कलेक्टर A.I.R. 1982 AP के मामले में निम्नांकित सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया—

(i) विधायिका का मुख्य आशय क्या है,

(ii) संविधि में प्रयुक्त की गयी भाषा क्या व्यवस्था देती है;

(iii) अधिनियम का उद्देश्य एवं उसकी योजना क्या है;

(iv) प्रभावित होने वाले अधिकारों की प्रकृति क्या है; तथा वे कौन सी परिस्थितियाँ हैं जिनमें संविधियों का निर्माण किया गया है।?

न्यूरेमबर्ग विचारण का दृष्टान्त—

न्यूरेमबर्ग विचारण में इस सूत्र को न्याय का सर्वमान्य सिद्धान्त माना गया है कि- "जब तक किसी अपराध के सम्बन्ध में कोई विधि अस्तित्व में नहीं है, उस अपराध का दण्ड गठित नहीं हो सकता" (Nullum Crimen Sine Lege, Nulla Poena Sine Lege). संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी कृत्य को भूतलक्षी प्रभाव से अपराध नहीं घोषित किया जा सकता है।

संविधि के भूतलक्षी प्रवर्तन वाली व्यवस्था जिस आधार सूत्र पर बनी है, वह है—

"Nova Constitutio futuris Forman Imponere Debet Non Praeterit is"

(A new law ought to be prospective, not retrospective in its operation)

अर्थात- नवीन विधि का प्रभाव, भविष्यलक्षी होना चाहिए न कि भूतलक्षी।" दूसरे शब्दों में नई विधि भविष्य के लिए है, अतीत के लिए नहीं।

उपरोक्त आधार सूत्र से यह उपधारणा बनती है कि प्रत्येक नई विधि भविष्यलक्षी प्रभाव वाली होनी चाहिए भूतलक्षी प्रभाव वाली नहीं। यदि किसी विधि का भूतलक्षी प्रभाव दिया जाना हो तो इस आशय का स्पष्ट उपबन्ध संविधि या अधिनियम में किया जाना चाहिए।

भारतीय संविधान का अनु॰ 20 आपराधिक मामलों में भूतलक्षी कानून के के प्रभाव को अस्वीकार करता है। इसलिए सामान्य रूप से जब तक विधायिका का आशय विपरीत न अभिव्यक्त किया गया हो तब तक सभी संविधियों के सन्दर्भ में यही उपधारणा होती है कि वह भविष्य लक्षी होगा।

भूतलक्षी प्रभाव के विधायन के अर्थान्वयन में काफी सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है और सम्बन्धित प्रावधान और अनुमत सीमा से अधिक उसका विस्तार नहीं किया जा सकता यह पुरानी उपधारणा है कि नवीन विधि का प्रभाव भविष्यलक्षी होना चाहिए। न कि भूतलक्षी

प्रत्येक अधिनियम भविष्य को प्रभावी करे न कि भूत को

Nova constitutio futuris For - man imponere debet non practerities (Every new enactment shout affect future and not the past.

- जब तक पहले से कोई विधि अस्तित्व में न हो तो उस अपराध को दण्डनीय नहीं माना जा सकता है (Nullum crimen sine lege Nulla poena without a pre-existing law.)

शेख गुलाम रसूल V जम्मू काश्मीर राज्य A.I.R 1965 J/K 77(81) के मामले में S.C ने भूतलक्षी अर्थान्वयन के लिए तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किये जाने का तर्क दिया है–

1. उक्त अधिनियम का उद्देश्य क्या है
2. उस पर भूतलक्षी कानून के द्वारा किस सामाजिक दोष का परिहार किया जाना है।
3. उक्त उद्देश्य के अभीष्ट के लिए कौन सी प्रणाली स्थापित की गयी है।

सरत चन्द्र नन्दा Vs यूनियन आफ इण्डिया A.I.R 1997 M.P. 70 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि–

"संविधियों के निर्वचन का यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि जब तक किसी संविधि में विनिर्दिष्टतया उसके भूतलक्षी प्रभाव के होने का उल्लेख नहीं किया गया हो, उसे प्रथम दृष्टया भविष्यलक्षी प्रभाव वाली माना जाना चाहिए।

प्रक्रियात्मक विधि भूतलक्षी हो सकती है

प्रक्रियात्मक सम्बन्धी विधि को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जा सकता है क्योंकि इससे अधिकारों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। और न इससे अधिकार परिवर्तित होते हैं।

लार्ड ब्लैकबर्न का मत है कि – प्रक्रिया में संशोधन सदैव भूतलक्षी होता है। जब तक कि कोई अन्यथा ठोस कारण न हो।

दाण्डिक विधि सदैव भविष्यलक्षी होती है–

स्टेट आफ बम्बई बनाम विष्णु रामचन्द्र 1961 S.C के मामले में S.C द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि–

" नये अपराध सृजित करने वाली दाण्डिक विधि सदैव भविष्य

लक्षी होती है।" दाण्डिक विधियाँ भूतलक्षी प्रवर्तन वाली नहीं हो सकती क्योंकि संविधान के अनु० २०(1) के अन्तर्गत इसको वर्जित किया गया है।

इस नियम का केवल मात्र एक ही अपवाद है — और वह यह है कि ऐसी कोई दाण्डिक विधि भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तित की जा सकती है जिससे अभियुक्त को लाभ मिलता हो।
(Ratanlal Vs State of Punjab AIR 1965 SC)

गुरुबचन सिंह Vs सतपाल सिंह AIR 1990 SC
के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113 (क) किसी नये अपराध का सृजन नहीं करती है। यह केवल साक्ष्य की एक प्रक्रिया है अतः इसे भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जा सकता है।

कार्योत्तर विधि एवं भूतलक्षी विधि—

यह उल्लेखनीय है कि "प्रत्येक कार्योत्तर विधि अनिवार्यतः भूतलक्षी होती है लेकिन प्रत्येक भूतलक्षी विधि का कार्योत्तर विधि होना आवश्यक नहीं है।"

कार्योत्तर विधि (Ex post facto laws) से अभिप्राय ऐसी विधि है जो —

(i) विधि से पूर्व कारित कृत्य को अपराध एवं दण्डनीय घोषित करती है,
(ii) पूर्व अपराध को गम्भीर बना देती हो,
(iii) दण्ड की मात्रा एवं गम्भीरता बढ़ा देती हो, अथवा
(iv) साक्ष्य के नियमों को सरल बना देती हो जिससे दोषसिद्धि आसान हो जाय।

सरल शब्दों में कार्योत्तर विधि से अभिप्राय है— कार्य कारित हो जाने के पश्चात विधि निर्माण।

इस प्रकार भूतलक्षी के कानूनों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात निम्नलिखित निष्कर्ष सारांशतः अभिव्यक्त किये जा सकते हैं —

(i) सामान्यतया नया विधान भविष्यलक्षी होता है न कि भूतलक्षी।

(ii) संविधि के भूतलक्षी प्रवर्तन के विपरीत उपधारणा की जाती है।

(iii) जहाँ दो निर्वचन सम्भव हो, न्यायालय को भूतलक्षी प्रभाव वाले अर्थान्वयन को अस्वीकार करना चाहिए।

(iv) जब कोई संविधि निहित अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, तब भूतलक्षी प्रवर्तन के विरुद्ध नियम लागू किया जाता है।

(v) यदि किसी संविधि को भूतलक्षी प्रभाव देना ही हो तो उसमें प्रयुक्त भाषा के परिधि के बाहर प्रभाव नहीं देना चाहिए।

(vi) किसी संविधि को भूतलक्षी प्रवर्तन के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से घोषित प्रावधान द्वारा अथवा न्यायालय के निर्वचन की विवक्षा द्वारा मान्य होता है।

(vii) वित्तीय एवं राजस्व सम्बन्धी विधि का निर्वचन भूतलक्षी होता है, किन्तु विधायिका द्वारा इसे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया जाना चाहिए।

(viii) प्रक्रियात्मक विधियों का भूतलक्षी प्रवर्तन सामान्यतः उपधारित किया जाता है। (There is presumption of retrospective effect when the statute deals with procedure.)